अनुशासित मस्तिष्क (डिसिप्लिन्ड माइंड्स) के हिंदी संस्करण के लिए लेखक का आमुख

यह कोई महज संयोग नहीं है कि हिंदी वह पहली भाषा है जिसमें डिसिप्लिन्ड माइंड्स का अनुवाद किया गया है। भारत वेतनभोगी पेशेवरों की कतारों में एक अभूतपूर्व वृद्धि देख रहा है, जिसका अर्थ है कि भारतीय समाज में औपचारिक शिक्षा एक बड़ी भूमिका का निर्वहन कर रही है, और नौकरियों के लिये ऐसे कर्मचारियों की आवश्यकता बढ़ रही है जो शक्तिशाली हितों का ध्यान रखें।

पेशेवर नौकरियों के लिये प्रतिस्पर्धा तीव्र हो गई है और शारीरिक के बजाय मानसिक श्रम वाले कामों में अवसर बढ़ गए हैं जिसकी वजह से भारत में शिक्षा अब एक ऊँचे दाँव वाला खेल बन गई है। इस कारण लोग ऐसा योग्यता पत्र (सर्टिफिकेट) चाहते हैं जिसकी कार्पोरेट दुनिया में मांग हो। अब शिक्षा ऐसी बड़ी भूमिका का निर्वहन कर रही है, जैसा उसने पहले कभी नहीं किया था, वह है लोगों को पदानुक्रम वाले समाज में उनकी जगह उपलब्ध कराना। प्रत्ययपत्रों (योग्यता पत्रों) की तलाश उस किसी भी व्यक्ति के व्यक्तित्व को मरोड़ने का भय उत्पन्न करती है, जो इसमें प्रवेश करता है और उसको पूरी तरह से बदल कर रख देती है। ऐसे में क्या आश्चर्य जब हम उन पेशेवरों के विषय में भारत में शिकायतें सुनते हैं कि वे अपने उन निगमों की आँख मूंद कर सेवा करते हैं जो उनके नियोक्ता हैं, और अन्य किसी बात से उन्हें कोई सरोकार नहीं होता। जैसा कि हम देखेंगे, इन ज्ञान कर्मियों का चयन ठीक इसलिये होता है कि वे पूर्ण लगन व योग्यता के साथ अपने मालिकों के राजनैतिक हितों की सेवा कर सकें।

सामाजिक पुर्नउत्पादन अत्यधिक धनवानों और अत्यधिक निर्धनों के लिये सरल है, किंतु बीच के परिवारों के लिये यह थक कर चूर कर देने वाला काम है। धन कुबेर अपने बच्चों को अकूत संपत्ति दे देते हैं जैसे निगम का स्वामित्व। इससे यह सुनिश्चित हो जाता है कि उनसे नीचे के वर्ग, मजदूरों से लेकर उच्च-वेतन प्राप्त पेशेवर, निगम की लाभ अर्जित करने वाली मशीन में अपने-अपने स्थानों पर रहते हुए धनिकों के बच्चों के लिये ही काम करेंगे। उसी प्रकार जिन्हें शारीरिक श्रम करना है, उन्हें भी चिंता करने की आवश्यकता नहीं है - जैसे कॉलेजों में प्रवेश पाने की, स्नातक उपाधि प्राप्त करने की, क्योंकि उन्हें शैक्षणिक योग्यतापत्रों की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। किंतु, जो पेशेवर नौकरियों के आकांक्षी हैं, उन्हें कई वर्षों

की शिक्षा तथा सूक्ष्म जाँच से गुजरना होगा।

पेशेवर नौकरियाँ सीमित हैं, अत: श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में प्रवेश हेतु जबर्दस्त प्रतिस्पर्धा है जहाँ से बहुराष्ट्रीय निगम और शीर्ष भारतीय कंपनियाँ भर्ती करना पसंद करती हैं। हर पृष्ठभूमि के आकांक्षी छात्र चिंतित हैं क्योंकि जीत की कोई सुनिश्चितता नहीं है। परंतु श्रेष्ठ योग्यता पत्रों की प्रतियोगिता में सर्वाधिक संसाधनों तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि वाले परिवारों के पक्ष में हेराफेरी की जाती है, अत: कौन जीतेगा और कौन हारेगा यह प्राय: पहले से ही मालूम रहता है। इसलिए क्यों लोगों को प्रतिस्पर्धा की चिंता तथा तनाव से गुजरने दिया जाना चाहिये जो कालेजों में 'प्रवेश परीक्षा नर्क' से लेकर अत्याचारी बौद्धिक रगड़ाई शिविर (बूटकेम्प) तक खिंची रहती है और जिसे स्नातक अथवा पेशेवर विद्यालय के नाम से जाना जाता है।

इसका उत्तर यह है कि प्रतियोगिता खुद ही शक्तिशाली हितों की सेवा करती है, और तब भी करेगी जब पारिवारिक पृष्ठभूमि के कारण दिये जा रहे फायदों को निकाल दिया जाए। प्रतिभागी दूसरों के द्वारा निर्धारित किये गए मानकों के अनुरूप प्रदर्शन करने हेतु प्रतिस्पर्धा करते हैं, और इस प्रक्रिया में खुद को इस बात के लिये तैयार कर लेते हैं, कि उन्हें एक वफादार कार्पोरेट नौकर बनना है — ऐसे कर्मचारी जो दिये गए लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये बगैर कोई सवाल किये जी तोड़ मेहनत करते हों। अत: चयन प्रणाली की बुनियाद में जो हेराफेरी होती है, उसे तो नियोक्ता के पक्ष में ही होना है, जिन्हें आज्ञाकारी, राजनैतिक द्रष्टि से अधीनस्त कर्मचारी चाहिये — न कि स्वतंत्र सोच रखने वाले।

नियोक्ताओं को भी समीक्षात्मक सोच (क्रिटिकल थिंकिंग) रखने वालों की ज़रूरत होती है, इसलिये समीक्षात्मक सोच और स्वतंत्र सोच का फर्क जान लेना आवश्यक है। (जिन्हें मैंने अध्याय-2 में क्रमश: ''प्लेपेन क्रिटिकल थिंकिंग'' और ''रीयल क्रिटिकल थिंकिंग'' कह कर संबोधित किया है।) हर पेशेवर कार्य में समीक्षात्मक या आलोचनात्मक सोच की ज़रूरत होती है, क्योंकि पेशवरों को नए मामालों का दायित्व सौंपा जाता है और उनसे निर्णय लेने की अपेक्षा की जाती है। किंतु ऐसी समीक्षात्मक सोच उस योग्यता से कुछ अधिक है कि ''सुनों, मालिक को यह नागवार गुजरेगा,'' ऐसा कहने के लिये आपके पास अपने सिद्धांत नहीं हो सकते। आपको केवल मालिक के सिद्धांत को समझना है और तदनुसार फैसला करना है। इसे ही मैं वैचारिक अनुशासन कहता हूँ।

अस्तु नियोक्ता, आलोचनात्मक विचारक चाहते हैं जो स्वतंत्र सोच वाले न हों। उन्हें ऐसे लोग चाहिये जिनका अपना कुछ नहीं है, अपितु जो दूसरों की प्राथमिकताओं के लिये विशेषज्ञ होते हों, और शिक्षा पद्धति ऐसे ही लोगों का उनके लिए उत्पादन करती है। इसलिये उच्च शिक्षित भारतीय कर्मचारियों में जो राजनैतिक निष्क्रियता देखी जाती है वह कोई महज एक दुर्घटना नहीं है। बौद्धिक कर्मी की राजनैतिक द्रष्टि से अधीनता, वस्तुत: विश्वव्यापी घटना है, जो हर उस जगह विद्यमान है जहाँ क्रमानुगत संगठन लोगों को नियुक्त करते हैं।

परंतु जैसा कि सक्रिय भारतीय छात्र और कर्मी लगातार दर्शा रहे हैं, स्कूल प्रशासक और कार्पोरेट कर्मचारी सदैव वह नहीं पाते जो वे चाहते हैं। अन्यों के साथ काम करने, और यह समझ जाने पर कि स्कूली शिक्षा तथा काम स्वभावत: राजनैतिक गतिविधियाँ हैं, आप अपने मूल्यों को बरकरार रखते हुए, शिक्षा और नौकरी का आनंद लेते हुए भी बचे रह सकते हैं, और दुनिया को अपने नजरिये से गढ़ सकते हैं। अंग्रेजी संस्करण के अनेक पाठकों ने मुझे लिखा है कि पुस्तक किस प्रकार उनके अपने स्कूल व नौकरी के अनुभवों का अर्थ निकालने में सहायक हुई, जिससे उनमें स्वतंत्र रूप से सोचने का आत्मविश्वास जाग्रत हुआ। (उनमें से कुछ पत्रों को http://disciplined-minds.com में पोस्ट किया गया है।) मुझे हिंदी संस्करण के पाठकों की प्रतिक्रियाएं पढ़ने का भी इंतजार रहेगा।

आप दुनिया मे फर्क तभी ला सकते हैं जब आप कुछ ऐसा करते हैं जो अन्यथा नहीं किया जाता हों। इसका मतलब है कि स्व-निर्दिष्ट योजनाओं पर काम करना, न कि सिर्फ उन कामों को करना, जिसके लिये आपको नियुक्त किया गया है। मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि डिसीप्लीन्ड माइंड्स का यह संस्करण ऐसी ही योजना है और बनियन ट्री, इंदौर का यह विचार कि हिंदी पाठकों के लिये भी यह पुस्तक सुलभ हो।

जैफ शिमट्
वाशिंगटन डी.सी
अगस्त 2011
jeffshmidt@alumni.uci.edu